अमर उजाला

नई दिल्ली | बृहस्पतिवार, 27 जून 2019

प्रवाह

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक

स्थापना वर्ष : 1948

मौत प्रकाश को खत्म करना नहीं है, यह सिर्फ दीपक को बुझाना है, क्योंकि सुबह हो गई है।
- रवींद्र नाथ टैगोर

सरेआम छेड़छाड़ का विरोध किए जाने पर एक दबंग द्वारा तेज रफ्तार कार चलाकर युवती के परिजनों को रौंद देने की घटना उत्तर प्रदेश में कानून-व्यवस्था के लचर हो जाने के बारे में बताती है।

दबंगों का दुस्साहस

उत्तर प्रदेश में बुलंदशहर के नयागांव में एक युवक ने एक दलित युवती से छेड़छाड़ करने का विरोध किए जाने पर उसके परिजनों पर तेज रफ्तार कार चढ़ाकर दो महिलाओं की जिस तरह जान ले ली, वह दबंगई की पराकाष्ठा है। कार की चपेट में आए दो और लोगों का अस्पताल में इलाज चल रहा है। जिस परिवार के साथ यह हादसा हुआ है, वे उसी समय एक शादी समारोह से लौटकर घर आए थे। देख लेने की धमकी देने के बाद अपने साथियों के साथ लौटकर अपराध को अंजाम देना यही बताता है कि दबंगों को शायद किसी का डर नहीं है। यह घटना दलितों की सुरक्षा पर भी टिप्पणी है। यह हालत तब है, जब इसी महीने कानून-व्यवस्था की समीक्षा करते हुए मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने कहा था कि दलितों, अल्पसंख्यकों और महिलाओं के खिलाफ अपराध न होने पाएं, इसका खास ध्यान रखा जाना चाहिए। लेकिन परिजनों के बयान और सोशल मीडिया पर इस घटना का वीडियो वायरल हो जाने के बाद भी पुलिस इस घटना को जिस तरह सड़क दुर्घटना बताती रही, वह उसके कामकाज के तरीके के बारे में बताने के लिए काफी है। ग्रामीणों के विरोध प्रदर्शन और कई घंटों तक हाइवे जाम करने के बाद पुलिस ने हत्या, अपहरण की कोशिश, छेड़छाड़ और एससी/एसटी ऐक्ट की धाराओं के तहत मामला दर्ज किया और मुख्य आरोपी को गिरफ्तार किया। इस महीने अलीगढ़ के टप्पल में ढाई साल की एक बच्ची की हत्या के मामले में भी प्रारंभ में पुलिस की ऐसी ही काहिली सामने आई थी, जब बच्ची के गायब होने की रिपोर्ट दर्ज करने से उसने इनकार कर दिया था। जाहिर है कि उस सूबे के लिए यह अच्छी स्थिति नहीं है, जो अपनी लचर कानून-व्यवस्था के कारण ही ज्यादा जाना जाता रहा है। मौजूदा सरकार अपराधियों में भय पैदा होने का दावा करने के साथ इनकाउंटर को अपनी उपलब्धि बताती है, जबकि पुलिस हिरासत में हुई एकाधिक मौतों पर मानवाधिकार आयोग ने सवाल उठाए हैं। बुलंदशहर के उस दबंग को सख्त सजा मिलेगी, और पीड़ित परिवार को मुआवजा भी मिल जाएगा। लेकिन पुलिस-प्रशासन बिना किसी पक्षपात के काम करे, अपराधों का तुरंत संज्ञान लिया जाए और अपराधियों में कानून-व्यवस्था का भय हो, इस दिशा में कदम उठाने की जरूरत कहीं ज्यादा है। तभी उत्तर प्रदेश कानून-व्यवस्था के मामले में देश का आदर्श राज्य बन पाएगा।

लक्ष्य करे सवाल तो क्या जवाब दें

भारत की कहानी सवालों और जवाबों में उलझकर रह गई है। धारणा को मंदी के जोखिम से चुनौती मिल रही है। पिछले हफ्तों के दौरान 2019-20 में जीडीपी की विकास दर को कम कर सात फीसदी रहने का अनुमान व्यक्त किए जाने के बीच दीर्घकाल में विकास दर के सात फीसदी से अधिक रहने का वादा कायम है।

राजनीतिक नेतृत्व वह सब कह रहा है, जो आकांक्षी भारत उससे सुनना चाहता है। लेकिन क्या नीति तंत्र वह सब कर रहा है, जिसकी जरूरत है? तथ्य यह है कि अर्थव्यवस्था आवश्यकता और अनुकूल परिस्थितियों के संधि स्थल पर खड़ी है।

जनसांख्यिकी में अंतर्निहित विकास के अवसर- और कच्चे तेल की कम कीमत या फिर अमेरिकी फेडरल रिजर्व की नीतियों की मेहरबानी से आसान रिटर्न जैसे अवसर का लाभ उठाने के लिए अनुकूल परिस्थितियों की जरूरत है।

पिछले हफ्ते भारत ने 2024 तक जीडीपी के पचास खरब डॉलर हो जाने का लक्ष्य रखा है, यह 28 खरब डॉलर की अर्थव्यवस्था के लिए वाकई बहुत बड़ा कदम होगा। क्या इसे हासिल किया जा सकता है? इसका जवाब नजरिये पर निर्भर करता है। सभी विकास अनिवार्य रूप से भिन्न तरह की कहानियों का योग होते हैं– भारत की जीडीपी राज्यों के उत्पादन का योग है। अमेरिकी राज्य कैलिफोर्निया की जीडीपी 27 खरब डॉलर की है, जबकि टेक्सास की 17 खरब डॉलर। भारतीय राज्यों में देखें, तो मुश्किल से पांच राज्य ही 200 अरब डॉलर को पार कर सके हैं, जिनमें चार सौ अरब डॉलर के साथ महाराष्ट्र शीर्ष पर है। विकास में तेजी और

राजनीतिक नेतृत्व वह सब कह रहा है, जो आकांक्षी भारत उससे सुनना चाहता है। लेकिन क्या नीति तंत्र वह सब कर रहा है, जिसकी जरूरत है? पचास खरब डॉलर का लक्ष्य वाकई बड़ा कदम है।

शंकर अय्यर, वरिष्ठ पत्रकार

अर्थव्यवस्था के विस्तार में स्थानीय नीतिगत सुधार उत्प्रेरक बनते हैं। क्या राज्य राजनीतिक बयानों के अनुरूप नीतिगत कार्रवाई कर रहे हैं? विकास के लिए जरूरी हर बड़ा सुधार अब राज्यों की दहलीज पर है।

2019 में भाजपा को 300 से भी अधिक सीटों के साथ ऐतिहासिक जनादेश मिला है और एक दर्जन से अधिक राज्यों में भी उसकी सत्ता होने के कारण उसके पास राजनीतिक सत्ता को बदलने का असाधारण अवसर है। इनमें महाराष्ट्र और गुजरात जैसे अमीर राज्य, झारखंड जैसा संसाधन संपन्न राज्य और सर्वाधिक आबादी वाले राज्य उत्तर प्रदेश और बिहार शामिल हैं।

अर्थव्यवस्था को नई कक्षा में भेजने के लिए मानव पूंजी यानी स्वास्थ्य, शिक्षा और कौशल से जुड़ी नीतियों में बदलाव लाने की जरूरत है। बेशक, सार्वजनिक वित्त पोषित स्वास्थ्य बीमा योजना आयुष्मान भारत मौजूद है, लेकिन इसकी भूमिका सीमित है, क्योंकि यह बीमार होने की स्थिति में ही काम करता है। एहतियाती और निवारक स्वास्थ्य सुरक्षा का क्या होगा?

बिहार में 150 से अधिक बच्चों की मौतों ने स्मरण कराया है कि जन स्वास्थ्य सुरक्षा प्रणाली में निवेश की जरूरत है। आंकड़े उपेक्षा की कहानी बताते हैं। नीति आयोग का अध्ययन दिखाता है कि 2017-18 में केरल ने स्वास्थ्य के लिए 6,882 करोड़ रुपये आवंटित किए थे, वहीं उससे तीन गुना अधिक आबादी वाले बिहार ने सिर्फ 6,668 करोड़ रुपये का बजटीय आवंटन रखा।

जन स्वास्थ्य सुरक्षा प्रणाली की खराब स्थिति कचरा प्रबंधन पर जन नीति की आपराधिक उपेक्षा के कारण और बदतर हुई है, जिससे गरीबों और मध्य वर्ग की अरक्षितता और बढ़ रही है। खराब नीति का मुजाहिरा राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के पूर्वी हिस्से में स्थित गाजीपुर में किया जा सकता है, जहां कूड़े का सबसे बड़ा ढेर जमा है, जिसकी ऊंचाई करीब 65 मीटर है और इसने फुटबॉल के चार सौ मैदान जितनी जगह घेर रखी है। वहां रोजाना दो हजार टन कचरा उड़ेला जा रहा है और इसकी ऊंचाई 75 मीटर को छू सकती है, यानी ताजमहल से भी ऊंचा जिसकी ऊंचाई 73 मीटर है।

शिक्षा की बदतर स्थिति किसी से छिपी नहीं है, खासतौर से सरकारी स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता। अभी गर्मियों में कुछ दिन पहले उत्तर प्रदेश की सरकार ने डाटा जारी कर बताया था कि यूपी बोर्ड की हाई स्कूल परीक्षा में 31.9 लाख बच्चे सम्मिलित हुए। मातृभाषा हिंदी की परीक्षा देने वाले 29.5 लाख बच्चों में से 5.74 लाख के करीब बच्चे इसमें फेल हो गए।

और जो लोग पास हो रहे हैं क्या उनके लिए नौकरियां हैं? हां और नहीं दोनों। पूरे देश में राज्य सरकारों ने पिछले पांच वर्षों से 22 लाख से अधिक सरकारी नौकरियों को खाली छोड़ रखा है। यह सुनने में भले अच्छा न लगे, लेकिन राजनीति में लोकलुभावन घोषणाओं का चुनावी लाभांश स्थायी समाधान पर भारी पड़ रहा है। क्या जो लोग पास हुए हैं उनमें रोजगार हासिल करने लायक कौशल है? कड़वा सच यह है कि उन लोगों के कौशल और शिक्षा का कोई मानचित्रण नहीं है, जो स्कूलों और कॉलेजों से बाहर निकलकर नौकरी के बाजार में प्रवेश करते हैं। यहां तक कि केंद्रीय स्तर पर भी डाटा सिर्फ पंजीयन को दर्शाता है मायने यह रखता है कि किस विषय में कितने स्नातक हैं। मैकेंजी का अध्ययन बताता है कि 1.2 करोड़ महिलाएं और 4.4 करोड़ पुरुष स्वचालन के कारण नौकरियां खो सकते हैं। क्या राज्यों के पास इससे निपटने की कोई योजना है? उत्पादकता, जमीन, श्रम और पूंजी जैसे कारकों पर गौर कीजिए। जमीन और श्रम सुधार राज्यों पर निर्भर हैं। कृषि जगत की हताशा न सिर्फ केंद्रीकृत नारों की मांग करती है, बल्कि राज्य सरकारों को सुव्यवस्थित समाधान तलाशकर उन पर अमल करना चाहिए। श्रम कानून संहिता का मसौदा 2016 से राज्यों के पास लंबित पड़ा है। इसी तरह से कांट्रेक्ट फार्मिंग से संबंधित आदर्श कानून राज्यों की राजधानियों में धूल खा रहा है।

हां, पूंजी की कमी है और वित्तीय बाजार के संकट ने विकास और निवेश को गति देने वाली वित्तीय गतिविधियों और खपत को अवरुद्ध कर रखा है। कम ब्याज वाली व्यवस्था आवश्यक है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। रिजर्व बैंक और सरकार के फिल्मी अंदाज में मैं हूं न कहने से काम नहीं चलेगा। पचास खरब डॉलर की आकांक्षा के लिए जरूरी होगा कि सत्तारूढ़ दल अपने शब्दों का मुद्रीकरण करे और चुनावी नारों पर अमल करे।

अंतर्ध्वनि

>> रोहिंग्टन मिस्त्री

किताबों से प्रेम होते हुए भी लेखक बनना प्राथमिकता में नहीं था

मैं मुंबई में एक मध्यवर्गीय पारसी परिवार में आजादी के बाद पैदा हुआ था। मेरे पिता एक विज्ञापन कंपनी में काम करते थे, जबकि मां बेहद संघर्ष करके परिवार की गाड़ी चलाती थीं। हम प्रायः नए कपड़े और नए जूते के लिए तरस जाते थे। हालांकि अभाव के बावजूद मेरी मां घर चलाने की जिम्मेदारी खुशी-खुशी निभाती थीं। बहुत बाद में मुझे एहसास हुआ कि तब मुंबई की आधी से अधिक संघर्षशील आबादी की तुलना में हमारा परिवार धनी था। बचपन से ही मुझमें पढ़ने की भूख थी। छोटी उम्र में मैंने एनिड ब्लिटन और रिचमैल क्रॉमटन की किताबें पढ़ डाली थीं। स्कूल में सबसे अधिक खुशी मुझे उस दिन हुई, जब मेरे अनुरोध पर प्रिंसिपल ने मुझे लाइब्रेरी से सप्ताह में दो किताबें ले जाने की अनुमति दे दी। लेखक बनने के बीज शायद उन्हीं दिनों अवचेतन में पड़ गए थे। मेरा छोटा भाई सायरस भी, संयोग से वह भी लेखक है, खूब किताबें पढ़ा करता था। कनाडा में बस जाने के बाद मैंने लेखन को सायास चुना। इसलिए कि मुंबई के बाद टोरंटो का अनुभव मुझे बहुत अलग लग रहा था। मुंबई में लोगों की भीड़ देखने की आदी मेरी आंखें टोरंटो की साफ-सुथरी सड़कें और सुव्यवस्था देख चकित थीं। मैं छुट्टी के दिन अपनी स्मृतियों और अनुभवों के आधार पर छोटी कहानियां लिख रहा था। जब वह संग्रह छपा और उसकी काफी चर्चा हुई, तो मैंने उपन्यास पर हाथ आजमाने का फैसला किया। सच ए लांग जर्नी की कहानी तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान के एक पारसी मेजर की कहानी है, जिसने बैंक से गबन कर सरकार-विरोधी आंदोलन खड़ा किया था। 1971 में हमारे घर में पिता और दूसरे लोग इस पर चर्चा करते हुए आश्चर्य प्रकट करते थे कि क्या कोई पारसी ऐसा भी हो सकता है! मैं आज इस मुकाम पर हूं, तो यह मेरा सौभाग्य ही है, क्योंकि मैंने कभी गंभीरता से लेखक बनने के बारे में सोचा ही नहीं था।

-चर्चित लेखक और उपन्यासकार।

मंजिलें और भी हैं

>> डॉ. रविंद्र कोल्हे

मेलघाट में कोई किसान अब आत्महत्या नहीं करता

उस समय मैं नागपुर मेडिकल कॉलेज से एमबीबीएस की पढ़ाई कर रहा था। महात्मा गांधी और विनोबा भावे के विचारों से प्रेरित होकर मैंने संकल्प ले लिया कि अपने हुनर का इस्तेमाल पैसों के लिए नहीं बल्कि जरूरतमंदों की मदद के लिए करूंगा। पर शुरुआत कहां से की जाए, यह समझ में नहीं आ रहा था। फिर मैंने निश्चय किया कि अपनी सेवाएं ऐसी जगह दूंगा, जहां स्वास्थ्य सुविधाएं नगण्य है। इसके लिए मैंने मेलघाट के बैरागढ़ को चुना। मैंने सुदूर इलाके में काम करने वाले किसी भी डॉक्टर के लिए जरूरी चीजें सीखी और बैरागढ़ चला गया। पर जल्द ही मुझे समझ आ गया कि सिर्फ डिग्री से मैं लोगों की समस्याएं हल नहीं कर सकता। इसके बाद मैंने एमडी किया और अपनी थीसिस मेलघाट में व्याप्त कुपोषण पर की। मैंने मेलघाट लौटने का फैसला किया। साथ ही डॉ. स्मिता से मैंने विवाह कर लिया। बैरागढ़ के लोग मुझ पर तो भरोसा करते थे लेकिन स्मिता को, जिन्होंने आते ही औरतों के हक के लिए लड़ना शुरू कर दिया था, स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। लेकिन जब स्मिता पहली बार मां बनने वाली थीं, मैंने निश्चय किया कि उनका प्रसव खुद करूंगा जैसा कि गांव वालों का होता है। पर किसी कारणवश बच्चे को कई बीमारियां हो गईं। लोगों ने कहा कि मां और बच्चे को अकोला के बड़े अस्पताल में ले जाया जाए। जब स्मिता ने मेरे निर्णय पर सहमति दी, तो गांव वालों की नजर में उनकी इज्जत और बढ़ गई। सभी जानते थे कि मेलघाट के बच्चे कुपोषण से मर रहे थे, और लोग निमोनिया, मलेरिया से। शोधकर्ताओं ने इन मौतों का कारण तो ढूंढ लिया था पर इसकी असल वजह कोई नहीं जान पाया था, जो कि गरीबी थी। वे निमोनिया से मरते थे, क्योंकि जाड़ों में उनके पास अपना तन ढकने को कपड़े नहीं होते थे। वे कुपोषण से मरते थे क्योंकि उनके पास कोई काम नहीं था, और जब खेती का मौसम नहीं होता था तब उनके पास पैसे भी नहीं होते थे। हमारे रख-रखाव व इलाज से जब गांव वालों का स्वास्थ्य सुधरने लगा तो उन्हें लगा कि हमारे पास हर चीज का इलाज है। अब वे अपने बीमार मवेशियों को भी इलाज के लिए लाने लगे। तब मैंने अपने एक पशु चिकित्सक मित्र से जानवरों की शारीरिक संरचना के बारे में पढ़ा और पंजाब राव कृषि विद्यापीठ अकोला से कृषि की पढाई की। काफी मेहनत के बाद मैंने एक एक ऐसा बीज विकसित किया, जिस पर फंगस नहीं लगता। पर कोई इसे पहली बार इस्तेमाल नहीं करना चाहता था, इसलिए मैंने खुद ही खेती और जागरूकता शिविरों का आयोजन शुरू किया जिससे खेती की नई तकनीकों के बारे में लोगों को जानकारी दी जा सके, पर्यावरण की रक्षा हो और वे सरकार द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं का लाभ उठा सकें। मेरा संदेश साफ था कि प्रगति के लिए खेती बहुत जरूरी है और युवाओं के खेती में आने से ही विकास होगा। मेरा बड़ा बेटा किसान बन गया। लाभ आधारित मॉडल के तहत हमने सोयाबीन की खेती शुरू की, जो महाराष्ट्र में कहीं नहीं होती थी। इसके अलावा किसानों को मिश्रित खेती करने के लिए प्रेरित किया और वे चीजें उगानी शुरू कीं, जो उनकी मूलभूत जरूरत थी। हमने पीडीएस (सार्वजनिक वितरण प्रणाली) को भी सही किया, ताकि बरसात के समय भी हर किसी को भोजन मिल सके। मेलघाट में अब कोई किसान आत्महत्या नहीं करता। अगर हम किसी को एक दिन का खाना देते हैं तो उसकी बस एक ही दिन की भूख मिटती है, पर अगर हम उसे कमाना सिखाते हैं तो हम उसे जिंदगी भर का खाना दे देते हैं। मैं पैसे नहीं लेता, बस हर जरूरतमंद को सरकारी अस्पताल ले जाकर स्वास्थ्य सुविधाएं दिलाता हूं।

- विभिन्न साक्षात्कारों पर आधारित।

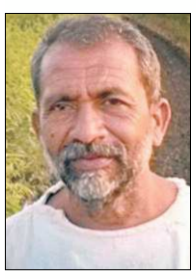

लंबी लड़ाई के बाद, अब मेलघाट में अच्छी सड़के हैं, बिजली है व 12 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र हैं।

विवादों से परे भी संस्कृत को देखिए

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा संस्कृत में भी प्रेस रिलीज जारी करने के फैसले पर उठने वाले सवाल हमारी उसी सोच को प्रतिबिंबित करते हैं, जिसके मुताबिक हर प्राचीन भारतीय चीज हमारे पिछड़ेपन की निशानी है।

उमेश चतुर्वेदी

पारंपरिक भारतीय ज्ञान को लेकर विवाद की जो परिपाटी रही है, उस संदर्भ में संस्कृत को लेकर विवाद होना अस्वाभाविक नहीं है। इस विवाद की वजह बना है उत्तर प्रदेश सरकार का वह फैसला, जिसके तहत अब राज्य सरकार की प्रेस विज्ञप्तियां संस्कृत में भी जारी होंगी। इस विवाद पर चर्चा से पहले पड़ोसी देश चीन की भाषा से जुड़े वाकये पर गौर करना चाहिए। चीन का समाज अब स्त्री-पुरुष की बराबरी पर चल रहा है। पर करीब आधी सदी पहले तक वहां का समाज भी पुरुष प्रधान था। तब पुरुषों के अत्याचार की वजह से महिलाओं ने चीन की आधिकारिक मंदारिन भाषा के भीतर भी एक कूट भाषा विकसित कर ली थी, जिसका महिलाएं ही इस्तेमाल करती थीं।

पुरुष वर्चस्ववाद खत्म होने के बाद उस भाषा की जरूरत नहीं रही। नतीजतन यह भाषा आज खत्म होने के कगार पर है। चीन को लगा कि महिलाओं की पुरानी पीढ़ी के ही साथ कूट मंदारिन का अंत हो जाएगा, लिहाजा उसने इस भाषा को संरक्षित करने के लिए कुछ साल पहले करीब दस करोड़ डॉलर की एक परियोजना पर काम किया।

इस परिघटना को हम भारतीय संदर्भ में परखने की कोशिश करें। अपने यहां ऐसा होता, तो इसे दकियानूसी और फिजूल की कवायद मानकर खारिज कर दिया जाता। उत्तर प्रदेश सरकार के फैसले के संदर्भ में संस्कृत को लेकर उठने वाले सवाल हमारी उसी सोच को प्रतिबिंबित करते हैं, जिसके मुताबिक हर प्राचीन भारतीय चीज हमारे पिछड़ेपन की निशानी है। मैकाले की योजना के मुताबिक भारतीय शिक्षा में अंग्रेजी के प्रयोग की शुरुआत 1860 में तब हो पाई, जब 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम नाकाम रहा। उससे पहले अपने देश में करीब पांच लाख स्कूल थे, जो समाज आश्रित थे, जहां या तो उर्दू-फारसी माध्यम से पढ़ाई होती थी या फिर अंग्रेजी माध्यम से। भारतीय विचारक धर्मपाल ने अपनी पुस्तक *द ब्यूटीफुल ट्री* में अंग्रेज सरकार के दस्तावेजों के हवाले से यह आंकड़ा पेश किया है। तब तक संस्कृत हमारी परंपरा की वाहक थी। उसके बाद हम संस्कृत ही क्यों, हर उस भारतीय चीज से पीछा छुड़ाते चले गए, जो कभी हमारे गर्व का जरिया थी। संस्कृत साहित्य की महानता के प्रति हम आग्रही तब हुए, जब जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने उसकी तरफ दुनिया का ध्यान आकर्षित किया। अपनी पारंपरिक आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के प्रति भी हमारा प्यार तभी बढ़ा, जब पश्चिम ने उसका लोहा माना। संस्कृत पर सवाल यह है कि जब कोई संस्कृत पढ़ता नहीं, संस्कृत में कोई मीडिया नहीं है, तो फिर उसमें प्रेस रिलीज भला क्यों जारी होनी चाहिए। अगर इस सवाल को जायज माना जाएगा, तो फिर दुनिया भर के विश्वविद्यालयों में हो रही संस्कृत की पढ़ाई पर सवाल उठाना पड़ेगा, संविधान की आठवीं अनुसूची पर भी सवाल उठाना होगा, जिसकी 22 भाषाओं में से एक संस्कृत भी है। जन्म, मृत्यु और दूसरे कर्मकांडों की प्रक्रिया पर भी सवाल उठाना होगा, जिनके मंत्र संस्कृत में ही हैं।

हमें नहीं भूलना चाहिए कि भाषाएं राजनीतिक ताकत का जरिया और उसे हासिल करने का औजार भी होती हैं। भाषाएं अपने साथ एक पूरी संस्कृति को ढोती हैं। इसलिए उनको बचाए रखना राजनीति के साथ ही समाज की भी जिम्मेदारी होता है। राज्याश्रय भाषाओं को नई ताकत देता है, समाज उसे बढ़ाता है और अगली पीढ़ी को सौंपता है। इसके जरिये भाषा जिंदा रहती है और विकसित भी होती है। उत्तर प्रदेश सरकार का यह कदम उसी श्रेणी में आता है। इस कदम के जरिये कुछ लोगों को रोजगार भी मिलेगा।

हरियाली और रास्ता

रिची, जूडो टीचर और जीत

यह कहानी उस लड़के है, जिसने हाथ खोने के बावजूद जीत हासिल की।

स्कूल से घर लौटते हुए रिची ने देखा कि एक बुजुर्ग महिला सड़क पार कर रही थी और पीछे से एक बस आ रही थी। रिची ने कई बार आवाज लगाई, पर महिला को सुनाई नहीं पड़ा। अंततः रिची ने बस के आगे कूदकर महिला की जान बचा ली, पर रिची घायल हो गया। अस्पताल में रिची का बायां हाथ काटना पड़ा। एक जूडो टीचर उस हादसे का चश्मदीद था। उसने रिची को जूडो सिखाने का फैसला किया। रिची के अस्पताल से छूटने के बाद से ही वह रोज उसके घर जाने लगा। शुरू में रिची इसके लिए तैयार नहीं हुआ, पर परिवार वालों ने उसे मना लिया। टीचर ने रिची को सिखाना शुरू कर दिया। पर वह रोज उसे सिर्फ एक ही दांव सिखाते थे। इस कारण कभी-कभी रिची को गुस्सा आ जाता था। यह सिलसिला दो साल तक चला। फिर एक दिन जूडो मुकाबले की घोषणा हुई। जूडो टीचर ने उसे इस मुकाबले में जगह दिलवा दी। पहले मैच में रिची की काफी धुलाई हुई। पर अंत में टीचर द्वारा सिखाए गए दांव से उसने अपने प्रतिद्वंद्वी को चित्त कर दिया। इसी एक दांव से वह एक के बाद एक मैच जीतकर फाइनल तक पहुंच गया। फाइनल में फिर रिची की धुलाई हुई। ऐसा लग रहा था कि प्रतिद्वंद्वी उसे बेदम कर देगा। रेफरी सीटी बजाने जा ही रहा था कि जूडो टीचर ने उसे रोक लिया, क्योंकि अभी थोड़ा समय बचा था। रिची के प्रतिद्वंद्वी ने क्षण भर के लिए अपना गार्ड नीचे क्या किया कि रिची ने वही दांव चला और प्रतिद्वंद्वी ढेर हो गया। रिची ने मुकाबला जीत लिया। बाद में रिची ने टीचर से पूछा, आपने मुझे केवल एक ही दांव सिखाया, फिर भी मैं कैसे जीत गया? टीचर बोले, तुमने एक दांव पर ही अपना ध्यान केंद्रित किया। इस दांव का एक ही तोड़ है कि कोई तुम्हारा बायां हाथ पकड़ कर घुमा दे। पर तुम्हारा बायां हाथ है ही नहीं।

कभी-कभी अपनी कमजोरी ही सबसे बड़ी ताकत बन जाती है।

खुली खिड़की

अरबपतियों द्वारा दान की गई संपत्ति

दुनिया भर में अरबपति समय-समय पर अपनी संपत्ति का कुछ हिस्सा सामाजिक कार्यों के लिए दान करते रहते हैं। इनमें सबसे आगे माइक्रोसॉफ्ट के संस्थापक बिल गेट्स हैं।

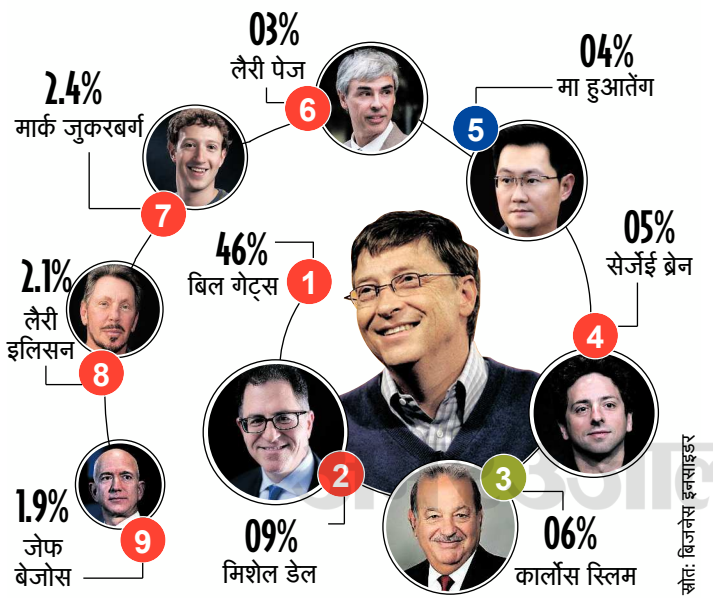

स्रोत: बिजनेस इनसाइडर

मृत्यु अनिवार्य है

महात्मा बुद्ध अपने शिष्यों के साथ बैठे हुए थे। एक महिला विलाप करते हुए उनके पास पहुंची। उसकी गोद में उसका मृत पुत्र था। वह महिला बुद्ध से कहने लगीं, महाराज, आप तो सर्वशक्तिमान हैं। मैं अपने एकमात्र पुत्र की मृत्यु के कारण अनाथ हो गई हूं। बेटे को छोड़कर मेरा इस दुनिया में कोई नहीं है। आप इसे जीवित कर दें, तो मेरा जीवन इसे पालने-पोसने में बीत जाएगा। महात्मा बुद्ध ने उस महिला से कहा, तुम किसी ऐसे घर से एक मुट्ठी मिट्टी लेकर आओ, जिस घर का कोई व्यक्ति मरा न हो। उस मिट्टी के बल पर मैं तुम्हारे पुत्र को जीवित कर दूंगा। महिला भागी-भागी उस नगर के घर-घर में जाकर बोली- मुझे आपके घर की एक मुट्ठी मिट्टी चाहिए, परंतु शर्त यही है कि आपके घर में कोई व्यक्ति कभी मरा न हो। लोग शर्त सुनकर हाथ जोड़कर विवशता प्रकट करते। वह पूरे नगर के सभी घरों का चक्कर लगा आई, परंतु उसे ऐसा एक भी घर नहीं मिला, जिसमें कोई व्यक्ति कभी मरा न हो। वह निराश होकर बुद्ध के पास पहुंची तथा कहने लगी, महाराज, मुझे तो एक भी घर ऐसा नहीं मिला, जिसका कोई व्यक्ति कभी मरा न हो। बुद्ध ने उसे समझाते हुए कहा, माता, मृत्यु अनिवार्य है। आज तक मृत्यु से कोई नहीं बचा। यह सुनकर उस महिला को जीवन का यथार्थ समझ में आया और उसने बेटे का दाह-संस्कार किया।

सत्संग

-संकलित